अष्टछापीय भक्त कवि नंददास का सांगीतिक योगदान

डॉ. श्रद्धा चोपड़ा
प्राथमिक शिक्षिका संगीत
केन्द्रीय विद्यालय डिमापुर, नागालैंड
Email – sangeet.shraddha@gmail.com

सारांश

मध्यकाल में उत्तर भारत के कृष्ण-मंदिरों में भक्ति की एक विशेष परंपरा थी, जिसमें भक्तगण नित नई पद रचनाओं और स्वर-रचनाओं के माध्यम से श्रीनाथ जी की उपासना एवं सेवा करते थे। इनमें वल्लभाचार्य जी एवं उनके द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के आठ शिष्य अष्टछाप भक्त कवि के नाम से विख्यात हैं। ये आठ महानुभाव संत कवि श्रीनाथ जी की नित्य लीला में अन्तरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे। ये संत कवि प्रतिदिन अपनी रचना बनाकर भिन्न-भिन्न राग एवं ताल के माध्यम से सुबह से शाम तक श्रीनाथजी की सेवा में प्रस्तुत किया करते थे। मंदिरों में प्रचलित संगीत की इसी परंपरा को अष्टछापीय संगीत के नाम से जाना जाता है। इन्हीं आठ भक्त कवियों में से एक थे नंददास जी। नंददास जी की रचनाओं में संगीत से संबंधित जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उन शब्दों की व्याख्या करना और उन्हीं के आधार पर संगीत के क्षेत्र में नंददास जी के योगदान पर प्रकाश डालना प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य है।

मुख्य बिन्दु: अष्टछापीय संगीत परंपरा, नंददास जी, संगीत रचनाएं, राग एवं ताल

अष्टछापीय संगीत परंपरा का परिचय:

भगवान के प्रति अनन्य सम्पूर्ण की भावना भक्ति कहलाती है। अष्टछाप आठ भक्त-कवियों का समूह था । ये भक्त कवि काव्य-संगीत और मंगला आदि झांकियों के माध्यम से श्रीनाथ जी की उपासना एवं सेवा करते थे । संगीत के इतिहास के उत्तर मध्यकाल में श्री वल्लभाचार्य जी एवं उनके द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी द्वारा आदेशित इन आठ संत कवियों के माध्यम से श्रीकृष्ण जी की उपासना, सेवा एवं कीर्तन गान व्यवस्थित ढंग से होने लगा। "भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार करने या धार्मिक प्रवृत्ति में नव उद्गम करने का अति विकट कार्य विक्रम की पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के आचार्यों, भक्तों एवं संत महंतों ने किया।"[1]

ये भक्त कवि अपने पदों के माध्यम से दिन के विभिन्न प्रहरों में श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का गायन, तत्कालीन समय में प्रचलित राग-रागिनियों के माध्यम से किया करते थे। ये आठों भक्त श्रीनाथ जी की नित्य लीला

[1] अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास, खंड 1-2, पेज-71, चम्पकलाल छबीलदास नायक, अष्टछाप संगीत कला केंद्र, अहमदाबाद, 1983

में अन्तरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे, इसी मान्यता के आधार पर इन्हें "अष्टसखा" कहते हैं।[2] इन आठ महानुभाव संत कवियों को अपनी निःस्वार्थ भक्ति के कारण परवर्ती काल में अष्टछाप भक्त कवियों की संज्ञा दी गयी एवं इनके द्वारा रचित संगीत को 'अष्टछापीय भक्ति संगीत' या 'पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत' के नाम से भी जाना जाता है। पुष्टिमार्गीय हवेलियों में प्रभु के समक्ष गाये जाने के कारण आकाशवाणी पर उसकी संज्ञा 'हवेली का संगीत' मिलती है।[3]

इन आठों ही संतों की शिक्षा विधिवत् रीति एवं अनुशासन में हुई। ये आठों ही उषा काल से रात्रि तक श्रीनाथ जी की विभिन्न झाँकियों के समय उनकी सेवा करते थे। ये सभी कवि विभिन्न रागों में नित्य नए-नए पदों की रचना करके उन्हें श्रीनाथ जी के सम्मुख गाया करते थे। इन सबने सैकड़ों पद लिखे एवं तत्कालीन समय में प्रचलित रागों में गाये। यद्यपि मूल रूप से ये भक्त थे तथापि इन्होंने अपने साध्य की साधना में उच्चकोटि के काव्य एवं संगीत का प्रयोग किया। इन संत कवियों ने काव्य एवं संगीत-जगत में अपना अमूल्य योगदान दिया है, जिसके कारण आज भी इनका स्मरण साहित्य एवं संगीत-जगत दोनों ही में बड़े सम्मान से लिया जाता है। इन संत कवियों के नाम हैं- कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नंददास।

नंददास जी का परिचय एवं उनकी रचनाएं:

संत कवि नंददास जी का जन्म विक्रम संवत् 1590 (ई.1534) में सोरों के समीप रामपुर ग्राम में हुआ था।[4] आपने रामानंदी पं. नरहरि से उत्तम रीति से विद्याभ्यास किया था। साथ ही उनसे संस्कृत भाषा की शिक्षा भी ग्रहण की थी। आपको बाल्यावस्था से ही काव्य एवं संगीत कला में गहन रुचि थी। संवत् 1607 के लगभग श्री विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास जी की प्रतिभा को परखकर उन्हें श्री नाथ जी के भक्तों मे सम्मिलित किया और इस प्रकार अष्टछाप भक्त-कवियों की पूर्ति की। नंददास जी की मृत्यु के संबंध में विद्वानों में किंचित् मतभेद है, "अष्टछाप परिचय" के आधार पर चंपकलाल जी ने उल्लेख किया है कि राजा अकबर के एक प्रश्न का प्रत्युत्तर गुप्त रखने के कारण नंददास एवं उनकी सेविका की मृत्यु हो गई थी। उक्त कथन का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। यहाँ शंका यह होती है कि किसी प्रश्न का उत्तर गुप्त रखने से किसी की मृत्यु कैसे हो सकती है? संभावना यह हो सकती है कि अकबर ने अपने प्रश्न का उत्तर ना मिलने के कारण कुपित होकर नन्ददास जी को मृत्यु-दंड दे दिया हो। इस विषय में चंपकलाल जी का स्वयं का यह मत है कि नंददास जी का देहावसान संवत् 1640 में स्वाभाविक रूप से हुआ था।

नंददास जी ने तत्कालीन समय में प्रचलित राग निबद्ध लगभग 400 पदों के अतिरिक्त रोला, चौपाई, दोहा एवं छोटे-छोटे छन्दयुक्त अनेक ग्रंथों की रचना की, जिनमें से कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं-अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, भँवरगीत, सुदामाचरित्र, प्रेम बाराखड़ी, बिरहमंजरी, रासपंचाध्यायी आदि।

नन्ददास की रचनाओं में प्रयुक्त होने वाले संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग और उनकी व्याख्या

नंददास जी ने अपनी पद रचनाओं में तत्कालीन समय में प्रचलित 36 राग-रागिनियों, साथ ही संगीत के अनेक

[2] हिंदी साहित्य का इतिहास नगेन्द्र, लेख-सगुण भक्ति काव्य, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पेज-217
[3] अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास, आमुख छः, खंड 1-2, चम्पकलाल छबीलदास नायक, अष्टछाप संगीत कला केंद्र, अहमदाबाद, 1983
[4] अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास, खंड 1-2, पेज-178, चम्पकलाल छबीलदास नायक, अष्टछाप संगीत कला केंद्र, अहमदाबाद, 1983

पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। रचनाओं में आने वाले राग-रागिनियों के नाम इस प्रकार है -- भैरव, रामकली, विभास, ललित, मालकौंस, देवगांधार, बिलावल, तोड़ी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, वसंत, पंचम, मल्हार, सोरठमल्हार, नट, पूर्वी, मालवगौरा, गौरी, हमीर, कल्याण, केदारो, कानरो, अडानो, ईमन, बिहाग, बिहागरो, खट, सुघराई, देसाख, मारू, काफी, जैजैवंती, नायकी, श्याम, कल्याण एवं बडहंस। रागों के उक्त नामोल्लेख के आधार पर यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि नन्ददास जी को राग-रागिनी पद्धति का पर्याप्त ज्ञान रहा होगा । यहाँ यह ध्यातव्य है कि नंददास जी ने जिन राग-रागिनियों का उल्लेख किया है, वह तत्कालीन समय में प्रचलित हनुमत् मत, भरत मत या राग-रागिनी परंपरा के जो भी मत प्रचार में थे, उनमें से किसी से भी समानता नहीं रखते। नंददास जी ने जिन रागों का उल्लेख किया है, वे सभी राग वर्तमान समय में प्रचार में हैं, भले ही इसमें से कुछ राग प्रचार में कम हैं। किन्तु यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि इन रागों का जैसा स्वरूप हमें आज दिखाई देता है, वैसा ही स्वरूप उस समय भी रहा होगा, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

इसके अतिरिक्त संत नंददास जी की रचनाओं में जो संगीत-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं- संगीत, अनाघात, नाद, गान, तान, उरप, अनहत, राग, मान, गति, तिरप, सुलप, नृत्य, नट, वीणा, सुरबीन, सुरमण्डल, मुरली, वेणु, बांसुरी, शहनाई, मृदंग, डफ, आवज, चंग, मुरज, उपंग, पटह एवं ढोल।

संगीत- गीत, वाद्य एवं नृत्य इन तीनों के समुच्चय को संगीत कहा जाता है ।[5]

नाद[6]- मानव देह में नाद की उत्पत्ति नकार अर्थात् प्राणवायु और दकार अर्थात् अग्नि के योग से होती है, इसलिये इसे नाद कहा जाता है । शब्द ब्रम्ह को ही नाद कहने की परंपरा योग और तंत्र दर्शनों में प्राप्त होती है। अभिप्राय ध्वनि के व्यापक स्वरुप से है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। नाद के दो भेद होते हैं -आहत नाद एवं अनाहत नाद। जब किसी ध्वनि की उत्पत्ति के पीछे घर्षण या कोई भौतिक कारण हो तो उसे आहत नाद एवं जब ध्वनि बिना किसी घर्षण या भौतिक कारण से उत्पन्न हो, तो उसे अनाहत नाद कहा जाता है।

गान - पदों को धातुबद्ध करके प्रस्तुत करने को गान कहा जाता है ।

राग - ऐसी विशिष्ट ध्वनि जो स्वर एवं वर्णों से विभूषित हो और जो श्रोताओं के चित्त का रंजन करे, उसे राग कहा जाता है ।[7] भारतीय संगीत मूल रूप से रागदारी परंपरा पर आधारित रहा है ।

तान - स्वरों के विस्तार को तान कहा गया है । स्वरों के क्रम परिवर्तन करके जो अनेक प्रकार के प्रस्तार बनते हैं, उन्हीं को तान कहा जाता है ।

मान – गायन, वादन तथा नर्तन में लगने वाले समय को ही सामान्य रूप से यहाँ मान कहा गया है ।

---

[5]गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते।। संगीत रत्नाकर, 1/1/21, पृष्ठ-12, अनुवादक सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

[6]नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते। संगीत रत्नाकर, 1/3/6, पृष्ठ-58 राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली अनुवादक सुभद्रा चौधरी प्रथम संस्करण 2000

[7]यौऽसो ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः। रंजको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः।। -श्री मतंग मुनि प्रणीता बृहद्देशी भाग-2, पृष्ठ-77, श्लोक-264, संपादिका- प्रेमलता शर्मा, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

अनाघात - गीत का ताल के साथ ग्रहण करने के आधार पर ग्रह के तीन प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है-सम, अतीत एवं अनागत। यहाँ अनाघात का अर्थ अनागत ग्रह से है । ताल के सम से पूर्व जब गायक, वादक या नर्तक सम दिखलाये, तो उसे अनागत ग्रह कहते हैं।

वीणा - प्राचीन काल में सभी प्रकार के तंत्री वाद्यों के लिए सामान्य रूप से वीणा शब्द का प्रयोग किया जाता था। ग्रन्थों में वीणा के कई प्रकारों का उल्लेख मिलता है; यथा-एकतंत्री, नकुल, त्रितंत्री, चित्रा, विपंची, मत्तकोकिला, आलापिनी, पिनाकी, रूद्रवीणा, किन्नरी आदि। नन्ददास जी ने वीणा शब्द का उल्लेख किया है, परन्तु वीणा के उपर्युक्त किसी प्रकार का उल्लेख उनकी रचनाओं मे प्राप्त नहीं होता।

सुरमंडल, स्वर मंडल - यह तत वाद्य है, जिसमें इक्कीस तार होते हैं। कभी-कभी एकतंत्री वीणा में प्रयुक्त होने वाली क्रमिका के समान छोटा लकड़ी का टुकड़ा लेकर उसमें मींड निकालने का उपक्रम भी करते थे। ये समस्त प्रक्रियाएं स्वर मंडल में भी होती थी।[8]

बाँसुरी - बाँसुरी अतिप्राचीन सुषिर वाद्य है। इसे बाँसुरी के अतिरिक्त मुरली तथा वेणु भी कहा जाता है।

शहनाई - यह एक प्रकार का सुषिर वाद्य है, और प्रायः विवाह आदि मंगल-प्रसंगों पर बजाया जाता है। उल्लेखनीय है कि सोलहवीं शताब्दी तक संगीत के किसी भी शास्त्र-ग्रंथ में शहनाई शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पंडित अहोबल ने इसका उल्लेख सुनादी के नाम से किया है, कहने का तात्पर्य यह है कि लोक में सोलहवीं शताब्दी में ही शहनाई वाद्य प्रचार में आ चुका था, इसलिये नन्ददास जी ने अपने पदों मे शहनाई वाद्य का प्रयोग किया होगा।

मृदंग, मुरज तथा मर्दल - प्राचीन ग्रंथों में मृदंग, पणव तथा दर्दुर को पुष्कर वाद्य कहा गया है । मुलायम मिट्टी से बनी हुई होने के कारण इसे मुरज कहते हैं ।[9]

डफ - यह एक हाथ से दो हाथ तक के व्यास का होता है। लोहे का एक गोल घेरा, जिस पर बकरे की खाल मढ़ी जाती है। यह खाल इस पर मढ़ी नहीं रहती, बल्कि चमड़े की बद्धियों द्वारा बँधी रहती है। इसे एक हाथ से किनारे पर तथा दूसरे हाथ में डंडी लेकर बजाया जाता है। यह चंग की भांति ही बजाया जाता है।[10]

चंग - लकड़ी का एक घेरा जिसे भेड़ की खाल से मढ़ा जाता है। लकड़ी पर यह खाल मेथी की सहायता से मढ़ी जाती है। यह दोनों हाथों से बजायी जाती है । एक हाथ से घेरे के किनारे पर तथा दूसरे से इसके मध्य भाग में आघात किया जाता है। घेरे के ऊपर वाले हाथ में एक पतली डंडी पकड़कर बजाया जाता है तथा दूसरे हाथ से

[8] भारतीय संगीत वाद्य, लालमणि मिश्र, पृष्ठ-135, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[9] भारतीय संगीत वाद्य, लालमणि मिश्र, पृष्ठ-188-190, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[10] भारतीय संगीत वाद्य, लालमणि मिश्र, पृष्ठ-366, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005

स्वतंत्र रूप से वादन किया जाता है।[11] उत्तरप्रदेश में लोकगीत के स्तर का ख्याल गाने वालों का यह प्रसिद्ध वाद्य चक्राकार स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है।[12]

उपंग - ताल-वाद्य उपंग में चमड़े और तार का प्रयोग होता है, किन्तु इसमें ध्वनि उत्पादन तन्त्री से किया जाता है, जो लय और ताल को व्यक्त करता है।[13]

पटह - मूल रूप से पटह एक प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। मध्यकाल में इसी पटह के आधार पर ढोलक नाम का वाद्य लोक में प्रचार में आ गया था, किन्तु संस्कृत के शास्त्र-ग्रंथों में पटह शब्द का प्रयोग ही किया जाता रहा है। 'संगीत-पारिजात' के मतानुसार पटह का अर्थ ढोलक है। उसमें स्पष्ट लिखा है - 'पटह ढोलक इति भाषायाम्'' और फिर स्पष्ट व्याख्या दी है कि पटह भेरि जाति का वाद्य है, जो डेढ़ हाथ लम्बा होता है। किसी-किसी के मत से यह स्थूल चमड़े से मढ़ा होता है। कोई उसे पतले चमड़े से मढ़ता है। यह लकड़ी अथवा हाथ किसी से भी बजाया जा सकता है ।[14]

ढोल - एक बड़े बेलन के आकार का वाद्य, जिसे लोहे की सीधी और चपटी परतों को आपस में जोड़कर बजाया जाता है। इन परतों को जोड़ने के लिए लोहे और ताम्बे की कीलें बारी-बारी से प्रयोग की जाती हैं। इस वाद्य पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। वाद्य को कसने-मढ़ने के लिए कुण्डल अथवा गजरे का प्रयोग किया जाता है। इसे कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है, जिसमें पीतल के छल्ले पड़े होते हैं। इसका नर भाग डंडी के द्वारा तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है।[15]

नृत्त, नृत्य - केवल मुद्राओं का संचालन नृत्त है, जबकि आंगिक चेष्टाओं के साथ पदाभिनय का समावेश नृत्य है ।

उरप – नृत्य प्रस्तुति करते समय एकदम कूदकर आगे आना तथा फिर सुन्दर अभिनय के साथ पीछे लौटना 'उरप' कहलाता है।[16]

तिरप - इसे 'तिरिप' भी कहते हैं। वास्तव में तिरप/तिरीप से तात्पर्य तिरछे भ्रमण करने से है। पैरों को स्वस्तिक दशा में रखकर तिरछे घूमने पर तिर्यक् भ्रमरी होती है। इससे स्पष्ट होता है, कि तिर्यक् का ही अपभ्रंश रूप तिरप/ तिरीप है।[17]

सुलप - कोमलता एवं नाज़ नखरे से सबको समझ में आये, इस तरह नृत्य करना 'सुलप' कहलाता है ।[18]

[11] भारतीय संगीत वाद्य, लालमणि मिश्र, पृष्ठ-366, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[12] भारतीय संगीत वाद्य, लालमणि मिश्र, पृष्ठ-366, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[13] नेट संगीत, तेजसिंह टाक, बेकरां आलमी फाउंडेशन,लखनऊ, 2010
[14] भारतीय संगीत वाद्य, डॉ लालमणि मिश्र, पृष्ठ-173, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[15] भारतीय संगीत वाद्य, डॉ लालमणि मिश्र, पृष्ठ-369 , भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005
[16] कथक कल्पद्रुम डॉ. चेतना ज्योतिषी पृष्ठ-350 अभिनव प्रकाशन सिविल लाइन्स, मंडला
[17] कथक कल्पद्रुम डॉ. चेतना ज्योतिषी पृष्ठ-351 अभिनव प्रकाशन सिविल लाइन्स, मंडला
[18] कथक कल्पद्रुम डॉ. चेतना ज्योतिषी पृष्ठ-351 अभिनव प्रकाशन सिविल लाइन्स, मंडला

निष्कर्ष एवं संभावनाएं--उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि नन्ददास जी ने अपनी पद रचनाओं में अनेक राग, संगीत के विभिन्न पारिभाषिक शब्द, विभिन्न प्रकार के वाद्य और नृत्य संबंधी पारिभाषिक शब्दों का भी उल्लेख किया है। उक्त विवेचन के माध्यम से निम्न बातें उजागर होती हैं -

- नंददास जी ने जिन 36 राग-रागिनियों का उल्लेख किया है, वे तत्कालीन समय में प्रचलित राग-रागिनी के किसी भी मत से समानता नहीं रखते।
- जिन रागों का नंददास जी ने उल्लेख किया है, वे सभी राग वर्तमान समय में प्रचार में हैं, भले ही इसमें से कुछ राग प्रचार में कम हैं। किन्तु यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि इन रागों का जैसा स्वरूप हमें आज दिखाई देता है, वैसा ही स्वरूप उस समय भी रहा होगा, यह नहीं कहा जा सकता।
- अपने पदों में नंददास जी ने यमन, मालकौंस एवं आसावरी राग का भी उल्लेख किया है। हम जानते हैं कि इन रागों का उल्लेख 16वीं-17वीं शताब्दी के किसी भी शास्त्र-ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि ये राग लोक में प्रचलित होने के बाद 15वीं-16वीं शताब्दी में मंदिरों में प्रयुक्त होने लगे होंगे।
- नन्ददास जी के पदों में चारों प्रकार के वाद्यों के नाम दिखाई देते हैं, इससे उस समय में प्रचलित मंदिर में प्रयुक्त होने वाले वाद्य-यंत्रों का अनुमान लगाया जा सकता है। सुरमंडल, स्वर-मंडल, शहनाई, डफ, चंग, उपंग आदि वाद्य, जिनका उल्लेख शास्त्र-ग्रंथों में परवर्ती काल में प्राप्त होता है, मंदिरों की अष्टछापीय परंपरा में 15वीं-16वीं शताब्दी में ही प्रचार में आ गए थे, लेकिन प्रमाण के अभाव में उनकी बनावट एवं संरचना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
- चंपक लाल जी ने नन्ददास जी ऐसी रचनाओं का भी उल्लेख किया है, जिनमें एकाधिक राग या एकाधिक तालों का प्रयोग होता है। ऐसी रचनाओं का उल्लेख राग कदंब, पञ्चतालेश्वर, तालार्णव आदि प्रबंधों के रूप में संगीत रत्नाकर(4/253-265) में भी प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन प्रबंध-परंपरा के अवशेष नन्ददास जी के समय तक प्रचार में थे।

  यहाँ हमने नन्ददास जी के पदों में प्राप्त तथ्यों के आधार पर उनके संगीत ज्ञान और संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान को प्रकाश में लाने का लघु प्रयास किया है। भविष्य में अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में आने पर उक्त विषय पर पुनर्विचार किया जा सकता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:

ज्योतिषी, चेतना. *कथक कल्पद्रुम*. अभिनव प्रकाशन सिविल लाइन्स, मंडला

टाक, तेजसिंह. *नेट संगीत*. लखनऊ: बेकरां आलमी फाउंडेशन.

नायक, चम्पकलाल छबीलदास. *अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास*. खंड 1-2, अष्टछाप संगीत कला केंद्र, अहमदाबाद, 1983

नायक, चम्पकलाल छबीलदास. *अष्टछापीय भक्ति संगीत उद्भव और विकास*. खंड-3, अहमदाबाद: अष्टछाप संगीत कला केंद्र, 1983

मतंग मुनि. *बृहददेशी*. भाग-2, संपादिका- प्रेमलता शर्मा, नई दिल्ली: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र.

मिश्र, लालमणि. *भारतीय संगीत वाद्य*, नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2005

शारंगदेव, *संगीत रत्नाकर,* अनुवादक सुभद्रा चौधरी, नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण 2000

स्नातक विजयेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास नगेन्द्र, लेख-सगुण भक्ति काव्य